आजादी के पहले फूलबाग स्थित केईएम हॉल में ब्रिटिश अफसर अंग्रेजी नाटकों का मंचन करते थे, आज वीरान पड़ा है। मर्चेंट चेंबर आडिटोरियम, लाजपत भवन या रागेन्द्र स्वरूप सेंटर फॉर परफार्मिंग आर्ट्स प्रेक्षागृह सभी जगह पहले की तरह नाटकों का मंच नहीं सजता है। लेकिन इन परिस्थितियों के बावजूद उम्मीद की किरण जगा रही है 2005 से सक्रिय संस्था अनुकृति रंगमंडल जो 'गिरिजा के सपने', 'मुख्यमंत्री', 'बकरी', 'जांच पड़ताल', 'मोटेराम का सत्याग्रह' जैसे 35 से ज्यादा नाटकों के 50 से अधिक शहरों में शो कर चुकी है।

कनपुरिया रंगमंच तलाश रहा फिर शिखर के लिए अवसर

अनुकृति से जुड़ी 'सिग्नेचर प्ले पुरुष', 'एक मामूली आदमी', 'टेररिस्ट की प्रेमिका', 'कोई एक रात' व 'सच कहें तो', में केन्द्रीय भूमिका निभाने वाली युवा रंगकर्मी संध्या सिंह कानपुर में थिएटर के भविष्य को लेकर आशान्वित हैं, उनका कहना है कि अनुकृति ने पिछले साल जुलाई में लखनऊ, सितंबर में शिमला के बाद इसी साल मार्च में कानपुर में नाट्य समारोह आयोजित करके दिखाया है कि दर्शकों का रुझान एक बार फिर रंगमंच की तरफ लौट रहा है। कभी नाटकों के लगातार हाउसफुल शो का रिकार्ड बनाने वाला और महानायक अमिताभ बच्चन अभिनीत 'दो और दो पांच', 'मिस्टर नटवरलाल', 'याराना' समेत दो दर्जन से अधिक फिल्मों के स्क्रिप्ट राइटर ज्ञानदेव अग्निहोत्री के शहर कानपुर का रंगमंच आज ओटीटी जैसी चुनौतियों के बीच एक बार फिर मजबूती से रंगमंच के राष्ट्रीय फलक पर अपनी पहचान बनाने में जुटा है।

आजादी से पहले और बाद में तीन दशक ऐसे रहे हैं, जब कानपुर के रंगमंच के हिस्से में सिनेमा से ज्यादा सुर्खियां, सीटियां और तालियां दर्ज हैं। 1942 में पीपीएन कॉलेज ग्राउंड में आयोजित इप्टा के राष्ट्रीय सम्मेलन में बलराज साहनी यहां आये थे, वरिष्ठ रंगकर्मी राधेश्याम दीक्षित के अनुसार तब उन लोगों ने कृष्ण चंदर का नाटक 'कुत्ते की मौत' किया था। इसके कुछ साल बाद सोहराब मोदी ने नाटक 'झांसी की रानी' किया। 1945 में देश की जानी मानी पृथ्वी थिएटर कंपनी बंबई से अपने सुपरहिट नाटक 'दीवार', 'पठान', 'पैसा और शंकुतला' लेकर कानपुर आई। आर्य नगर के बड़े मैदान (अब गैंजेस क्लब) में हुए इन नाटकों में पृथ्वीराज कपूर का शानदार अभिनय देखकर हजारों की भीड़ मंत्रमुग्ध रह गई थी।

कभी सिनेमा से ज्यादा सुर्खियां, सीटियां और तालियां बटोरता था नाटकों का मंचन

हाउसफुल शो तथा टिकटों की एडवांस बुकिंग के टूटे रिकार्ड

80 के दशक में देश-विदेश में ख्याति बटोर चुके बब्बन खां के कॉमेडी नाटक "अदरक को पंजे" के लगातार एक हफ्ते तक हाउसफुल शो ने उस वक्त टिकटों की एडवांस बुकिंग के रिकार्ड तोड़ दिए थे। दिग्गज कलाकार जुगनू के नाटक 'सखाराम बाइंडर' के भी एक हफ्ते तक हाउसफुल शो लाजपत भवन में हुए थे। अनुकृति की कोषाध्यक्ष निशा वर्मा के अनुसार दस्यु सुंदरी फूलन देवी के आत्मसमर्पण के बाद साहित्यकार कामतानाथ ने नाटक लिखा फूलन। वरिष्ठ रंगकर्मी, निर्देशक विजय दीक्षित ने लाजपत भवन में इसका सफल मंचन किया। 2018 में कानपुर के लेखक पद्मश्री गिरिराज किशोर की मौजूदगी में उनके प्रसिद्ध नाटक 'प्रजा ही रहने दो' का मंचन देखने वाला था।

आजादी के बाद का स्वर्णिम सफर

1960 से 67 के बीच कानपुर ड्रामेटिक एसोसिएशन (काडा) ने 'नेफा की एक शाम', 'चिराग जल उठा', 'शुतुरमुर्ग' जैसे नाटकों के सफल मंचन किए। लेकिन 70 से 80 का दशक रंगमंच का स्वर्णिम दौर कहा जा सकता है, तब शहर में दर्पण, एंबेसडर, शिल्पी, प्रतिध्वनि, नाट्य भारती, आयाम, रंगलोक, अनुभूति, नाट्यांगन, कलाविद्, एकजुट, तक्षशिला, अलंकृत, कलानयन समेत दो दर्जन से अधिक संस्थाएं तथा प्रेम स्वरूप निगम, विजय दीक्षित, वीरेंद्र सक्सेना, कृष्णा सक्सेना, सुरेन्द्र सविता, अंबिका सिंह वर्मा, राजेंद्र सिंह, डा राजेंद्र वर्मा, रतन राठौर, दीप सक्सेना, विजय बनर्जी, पियूष विद्यासागर, राकेश डग, राकेश चतुर्वेदी, डेनिस क्लेमेट, संजीव सिकोरिया, असित डेनियल, संतोष गुप्ता, अवधेश मिश्रा, एनके नेब सरीखे रंगकर्मी रंगमंच पर नित नये नाटकों का मंचन करते थे।

- धीरे-धीरे लाइव परफॉर्मेंस से जुड़ रहा दर्शकों का बड़ा वर्ग : रंगकर्मी दीपक राज राही कहते हैं कि 90 के दशक में पहले टीवी चैनल्स, फिर इंटरनेट क्रांति से छोटे शहरों के थिएटर को काफी नुकसान पहुंचा। घर बैठे मनोरंजन के तमाम विकल्पों ने दर्शको को ड्राइंगरुम में कैद कर दिया। हालांकि अब दर्शकों का बड़ा वर्ग एक बार फिर लाइव परफॉर्मेंस की ओर लौट रहा है।
- कंटेंट दमदार तो फीके कॉस्ट्यूम, सेट और लाइट ले चल जाता काम : थियेटर में कंटेंट ही किंग था, और रहेगा। यदि नाटक विषय-वस्तु के स्तर पर दर्शकों के साथ जुड़ जाता है तो उन्हीं का हो जाता है। फिर सेट, कॉस्ट्यूम, प्रकाश परियोजना किसी भी स्तर के हों दर्शक नाटक को हाथों हाथ ले लेते हैं। यह बताते हुए डा. ओमेन्द्र कुमार इस बात पर निराशा जताते हैं कि नाटकों में आजकल पहले की अपेक्षा कंटेट पर सबसे कम ध्यान दिया जा रहा है। उनके अनुसार यह एक सामूहिक कला है। इसलिए सभी साथियों में तालमेल और लंबे समय तक उनका साथ बने रहना भी जरूरी है।

लेखक
डॉ ओमेन्द्र कुमार
रंग कर्मी

आस्था, संस्कृति व परंपरा का मिलन है नंदा देवी महोत्सव

सरोवर नगरी नैनीताल 28 अगस्त से भक्ति, संस्कृति और परंपरा की अनुपम छटा से सराबोर होगी। इस दिन से कुमाऊं अंचल का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व अटूट धार्मिक आस्था का उत्सव नंदा देवी महोत्सव आरंभ होगा, जो पांच सितंबर तक चलेगा। यह महोत्सव सदियों से क्षेत्रीय संस्कृति, लोक कला, रीति-रिवाजों और सामूहिक श्रद्धा का परिचायक है। इस महोत्सव की नींव 16वीं शताब्दी में राजा कल्याण चंद के शासनकाल में रखी गई थी। उन्होंने अपनी बहन नंदा देवी की स्मृति में यह पर्व आरंभ किया था। वर्ष 1902 में अल्मोड़ा के मोतीराम साह ने नैनीताल में नंदा देवी महोत्सव के भव्य आयोजन की शुरुआत की थी। 1926 से श्रीराम सेवक सभा ने इस महोत्सव की जिम्मेदारी ले ली, और तब से लगातार आयोजन कर रही है। यह धार्मिक महोत्सव देवी नंदा और सुनंदा को समर्पित है। महोत्सव की शुरुआत आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों से कदली वृक्ष लाने के साथ होती। राम सेवक सभा का एक दल श्रद्धालुओं के साथ कदली (केले का पेड़) लेने जाता है, अगले दिन कदली वृक्ष को नगर भ्रमण कराया जाता है, फिर कदली वृक्षों से नंदा व सुनंदा की मूर्तियां तैयार की जाती हैं। यह एक पारंपरिक और पवित्र प्रक्रिया है। मूर्ति निर्माण के बाद नंदाष्टमी के दिन मूर्तियों को श्रद्धालुओं के दर्शनार्थ रखा जाता है। मंदिर में विशेष पूजा और अनुष्ठान किए जाते हैं। नंदा देवी महोत्सव नैनीताल के नयना देवी मंदिर परिसर में मनाया जाता है। मां नंदा देवी और सुनंदा देवी कुमाऊं क्षेत्र की कुलदेवी मानी जाती हैं। महोत्सव के अंतिम दिन मां नंदा सुनंदा की मूर्तियों को शहर में शोभायात्रा निकाली जाती हैं। नगर भ्रमण के बाद मूर्तियों का विसर्जन किया जाता है। यह महोत्सव कुमाऊं की संस्कृति, परंपरा और एकता का प्रतीक है।

नैनीताल के साथ अल्मोड़ा, भवाली, बिन्दुखत्ता और हल्द्वानी में भी होता महोत्सव का आयोजन

झोड़ा, चांचरी व भगनौल लोकगीत व छोलिया नृत्य

- महोत्सव में स्थानीय कलाकारों को अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर मिलता है। जिसमें झोड़ा, चांचरी व भगनौल आदि लोकगीत व छोलिया नृत्य आयोजित किए जाते हैं। इसमें कुमाऊं के कलाकार भाग लेते हैं। यह महोत्सव नैनीताल के अलावा अल्मोड़ा, हल्द्वानी, बिन्दुखत्ता, चंपावत मुनस्यारी रानीखेत व भवाली समेत अन्य जगहों पर भी मनाया जाता है। महोत्सव के दौरान धार्मिक अनुष्ठान पंच आरती, कन्या पूजन, हवन और यज्ञ नयना देवी मंदिर परिसर में आयोजित किए जाते हैं। महोत्सव में इको फ्रेंडली वस्तुओं और प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता है।

लेखक
मुकेश जोशी, मंटू
पूर्व अध्यक्ष, श्रीराम सेवक सभा, नैनीताल।

सांस्कृतिक-सामाजिक एकता का सार्वजनिक उत्सव

भगवान गणेश की आराधना का पर्व गणेशोत्सव धार्मिक आयोजन से कहीं आगे बढ़कर हमारी सांस्कृतिक धड़कन जैसा है। सनातन परंपरा, सामूहिक शक्ति और सामाजिक एकता का संवाहक है। शिवाजी ने जहां इसे मुगलों के विरुद्ध जनभागीदारी का उत्सव बनाया, वहीं अंग्रेजों ने जब हिंदू पर्वों और सार्वजनिक आयोजनों पर रोक लगाने की कोशिश की, तो लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने इस उत्सव को जन-जन की एकता से जोड़कर स्वतंत्रता संग्राम का जयघोष बना दिया।

गणेश उत्सव का महत्व

भाद्रपद चतुर्थी को गणपति स्थापना से आरंभ होकर अनंत चतुर्दशी को होने वाले विसर्जन तक गणपति विविध रूपों में पूरे देश में विराजमान रहते हैं। उन्हें मोदक तो प्रिय हैं ही, परंतु गणपति अकिंचन को भी मान देते हैं, अतः दूर्वा, नैवेद्य भी उन्हें उतने ही प्रिय हैं।

इसलिए कहा जाता लंबोदर

- ज्योतिषशास्त्र में तीन गणों का उल्लेख मिलता है, देव, मनुष्य और राक्षस। गणपति समान रूप से देवलोक, भूलोक और दानव लोक में प्रतिष्ठित हैं। श्रीगणेश ब्रह्मस्वरूप हैं और उनके उदर में यह तीनों लोक समाहित हैं इसी कारण इनको लंबोदर कहते हैं। लंबोदर होने का अर्थ है जो कुछ उनके उदर में चला जाता है, फिर वहां से निकलता नहीं है।

लोक मंगल के देवता

- गणों के अधिपति श्रीगणेश प्रथम पूज्य हैं। किसी भी शुभ कार्य या कर्मकांड में विघ्नहर्ता के रूप में उनकी पूजा-आराधना सबसे पहले की जाती है। गणेश लोक मंगल के देवता हैं, जहां भी अमंगल होता है, उसे दूर करने में अग्रणी रहते हैं। वह रिद्धि और सिद्धी के स्वामी हैं। भाद्रपद की शुक्लपक्ष चतुर्थी गणपति की प्राकट्य तिथि है। गणेशोत्सव का आरंभ इसी दिन से होता है।

गणपति विसर्जन की कथा

- पौराणिक कथा के अनुसार महर्षि वेद व्यास ने महाभारत लिखने के लिए भगवान गणेश से प्रार्थना की। गणेश जी ने वेद व्यास जी की बात मान ली और 10 दिनों तक बिना रुके महाभारत लिखते रहे। 10 दिन बाद वेद व्यास जी ने जब अपनी आंखें खोलीं, तो उन्होंने देखा कि गणेश जी का शरीर बहुत गर्म हो गया है। वेद व्यास जी ने गणेश के शरीर को ठंडा करने के लिए उन्हें एक सरोवर में स्नान कराया। कहा जाता है कि इसी से गणेश विसर्जन की प्रथा शुरू हुई। यह भी माना जाता है कि गणेश विसर्जन का अर्थ जीवन-मृत्यु के चक्र को समझना तथा मोह माया से मुक्ति पाना है।

लेखक
पं. मनोज कुमार द्विवेदी
ज्योतिषाचार्य

ईसा पूर्व का इतिहास, पेशवा राज में प्रमाण

श्रीगणेश उत्सव का इतिहास काफी प्राचीन है। महाराष्ट्र में सातवाहन, राष्ट्रकूट और चालुक्य वंश के शासकों के दौर में गणेशोत्सव की प्रथा थी। 200 ईसा पूर्व से दूसरी सदी (ईसा के बाद) तक दक्षिण भारत के बड़े इलाके पर सातवाहन वंश का शासन था। इस वंश के राजाओं के समय गणेश पूजा शुरू हुई थी। पेशवाओं के दौर में गणेश पूजा का चलन तेजी से बढ़ा। मुगल शासन के दौरान सनातन संस्कृति बचाने के लिए छत्रपति शिवाजी ने माता जीजाबाई के साथ मिलकर गणेश महोत्सव की शुरुआत की थी। पेशवाओं के बाद यह उत्सव कमजोर पड़कर केवल मंदिरों और राजपरिवारों तक सिमट गया। 1892 में भाऊसाहब लक्ष्मण जबाले ने सार्वजनिक गणेशोत्सव प्रारंभ किया। लोकमान्य तिलक ने 1893 में अपनी पत्रिका 'केसरी' के कार्यालय में गणपति की स्थापना की और लोगों से स्थापना के लिए प्रेरित किया।

एक धरोहर जो अब खंडहर, यहीं था कोह-ए-नूर हीरा

वारंगल किला

यूनेस्को की विश्व धरोहर स्थल की अस्थायी सूची में शामिल वारंगल किला, तेलंगाना के वारंगल जिले में स्थित है। किले में चार सजावटी द्वार हैं, जो अब खंडहर हो चुके हैं पर किसी समय शिव मंदिर के प्रवेश द्वार थे। इस किले के निर्माण को लेकर इतिहासकार और पुरातत्वविद् मानते हैं कि पहले ईंट की दीवार वाली संरचना थी जिसे गणपतिदेव (1199 ईस्वी-1262 ईस्वी) द्वारा पत्थर से बदल दिया गया था, और उनकी बेटी रुद्रमा देवी ने इसे पूरा किया, जिन्होंने 1289 तक शासन किया था। 1309 में, अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफ़ूर ने बड़ी सेना के साथ किले पर हमला कर इसे घेर लिया था, तब राजा प्रतापरुद्र द्वितीय और उनके लोगों ने खुद को किले के भीतर सुरक्षित कर लिया और हमलावर सेना के साथ कई महीनों तक बहादुरी से युद्ध किया। बाद में हुए युद्धविराम में कई कीमती खजानों के साथ कोह-ए-नूर हीरा भी काफूर दिल्ली ले गया। किले की छह माह से ज्यादा चली घेराबंदी का वर्णन अमीर खुसरो ने किया है। 1318 में फिर से, वारंगल किले पर कुतुबुद्दीन मुबारक शाह की सल्तनत सेना ने हमला किया। 1320 में, खिलजी की जगह लेने वाले दिल्ली के तत्कालीन शासक सुल्तान गियासुद्दीन तुगलक ने अपने बेटे उलुग खान (बाद में मुहम्मद तुगलक) को वारंगल किले पर एक बार फिर हमला करने के लिए भेजा, क्योंकि प्रतापरुद्र द्वितीय ने तुगलकों को अधिपति के रूप में स्वीकार नहीं किया था और उन्हें कर देने से इनकार कर दिया था। उलुग खान ने 1323 में 63,000 तीरंदाज घुड़सवार सैनिकों के साथ किले पर हमला किया 5 महीने तक दीवारों को तोड़ने के लिए क्रूर रणनीति का इस्तेमाल किया। इसने प्रतापरुद्र द्वितीय को आत्मसमर्पण करने के लिए मजबूर किया और किले के द्वार खोल दिए गए। तब सल्तनत की सेनाओं ने पत्थर की दीवार के भीतर और बाहर राजधानी को लूटा और स्वयंभू शिव मंदिर भी नष्ट कर दिया, जो राज्य देवता, चतुर्मुख लिंग स्वामी (शिव के चार चेहरों वाला लिंग) था। मंदिर में अब जो कुछ भी दिखाई देता है वह किले के केंद्र के आसपास बिखरे अवशेष हैं। इसके बाद वारंगल शहर का नाम बदलकर सुल्तानपुर कर दिया गया और 1324 से 1332 तक वहां शाही सिक्के ढाले गए।